सूखे में बरखा की तरह: गोदावरी डांगे

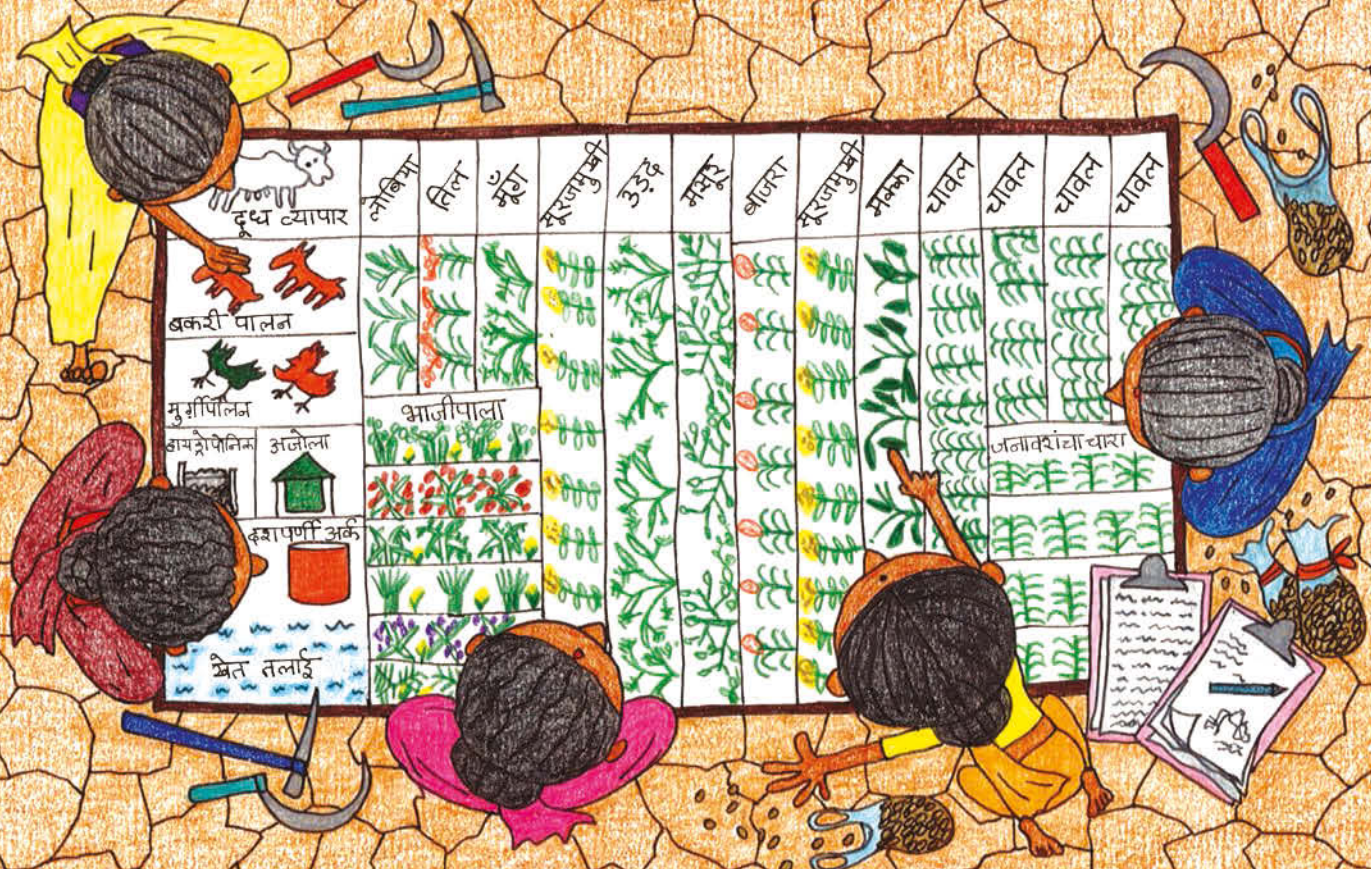

लेखन: रीतिका रेवती सुब्रमणियन
चित्रांकन: मैत्री डोरे

सूखे में बरखा की तरह : गोदावरी डांगे

लेखन : रीतिका रेवती सुब्रमणियन
चित्रांकन : मैत्री डोरे

अनुवादक: अंकित मौर्य

© Copyright, 2021 इस पुस्तक के सर्वाधिकार रीतिका रेवती सुब्रमणियन व मैत्री डोरे के पास सुरक्षित हैं। कोई भी व्यक्ति या संस्था इस पुस्तक की आंशिक या पूरी सामग्री किसी भी रूप में रीतिका रेवती सुब्रमणियन, मैत्री डोरे व Goethe-Institut Indonesien की लिखित अनुमति के बिना मुद्रित/ प्रकाशित नहीं कर सकते।

'सूखे में बरखा की तरह: गोदावरी डांगे' कॉमिक की रचना रीतिका रेवती सुब्रमणियन व मैत्री डोरे द्वारा Goethe-Institut Indonesien के Movements and Moments – Feminist Generations प्रोजेक्ट के अंतर्गत की गयी है। इस परियोजना का उद्देश्य विश्व के दक्षिणी हिस्से से स्वदेशी नारीवादी कार्यकर्ताओं और जन-नायिकाओं के जीवन की कहानियों को कॉमिक्स के सुलभ प्रारूप में प्रस्तुत करना है।

GOETHE INSTITUT

आभार

हम गोदावरी डांगे के प्रति अपना आभार व्यक्त करना चाहते हैं कि उन्होंने अपनी कहानी को आप तक पहुँचाने के लिए हम पर भरोसा किया। गोदावरी ताई के परिवार, साथियों और स्वयम् शिक्षण प्रयोग (उस्मानाबाद) के सहकर्मियों का उनके समय, धैर्य और अविस्मरणीय आतिथ्य के लिए विशेष धन्यवाद।

एक कॉमिक के माध्यम से कहानी कहना कभी भी आसान नहीं होता, पर नाचा फ़ोलनवायडर और Goethe-Institut Indonesien की टीम के साथ चर्चाओं ने हमें गोदावरी ताई की जीवन-कथा को इस रूप में प्रस्तुत करने में बहुत मदद की।

यह पुस्तक मराठवाड़ा की सभी महिला-किसानों को समर्पित है।

अध्याय १ : शुरुआत

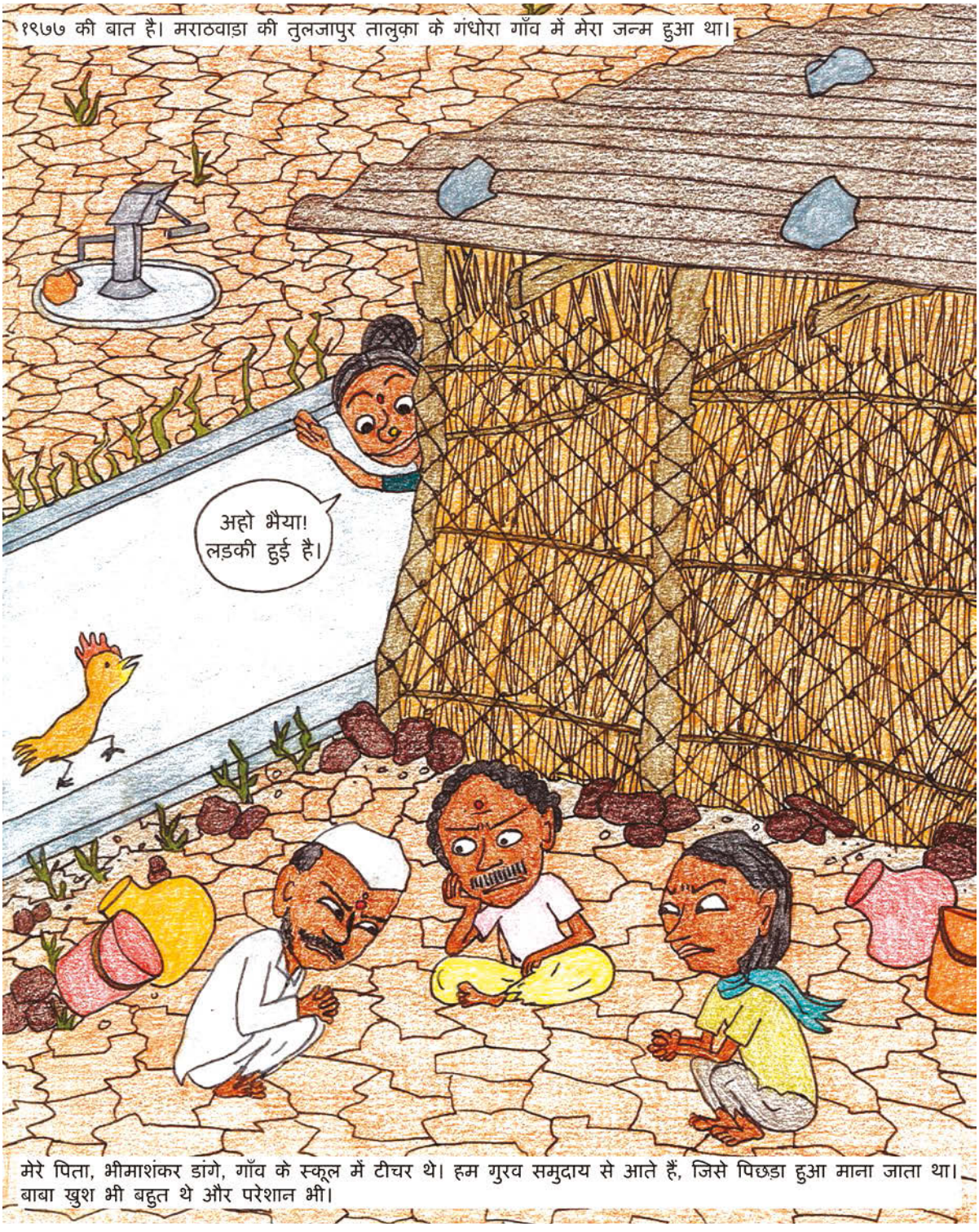
१९७७ की बात है। मराठवाड़ा की तुलजापुर तालुका के गंधोरा गाँव में मेरा जन्म हुआ था।
अहो भैया! लड़की हुई है।
मेरे पिता, भीमाशंकर डांगे, गाँव के स्कूल में टीचर थे। हम गुरव समुदाय से आते हैं, जिसे पिछड़ा हुआ माना जाता था। बाबा खुश भी बहुत थे और परेशान भी।

१९६० के दशक में भारत सरकार ने नई कृषि तकनीकों को बढ़ावा दिया जिससे बंजर खेतों में भी गेहूँ और धान की फ़सल लहलहाती थी।
हरित क्रांति
पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के किसान हरित क्रांति की सफलता का जश्न मना रहे थे।
दिल्ली
गंगा नदी
भारत
महाराष्ट्र
गोदावरी नदी
मुंबई
पर इधर मराठवाड़ा में हम अभी तक १९७२ के भयंकर सूखे से उबरने की कोशिश कर रहे थे।
गोदावरी नदी भारत की दूसरी सबसे लम्बी नदी है। गोदा माई मानकर इसकी पूजा की जाती है। माँ, जो पैदा करती है और पालती है। बार-बार के अकाल से गोदावरी नदी भी सूख गयी थी।
मराठवाड़ा
गंधोरा

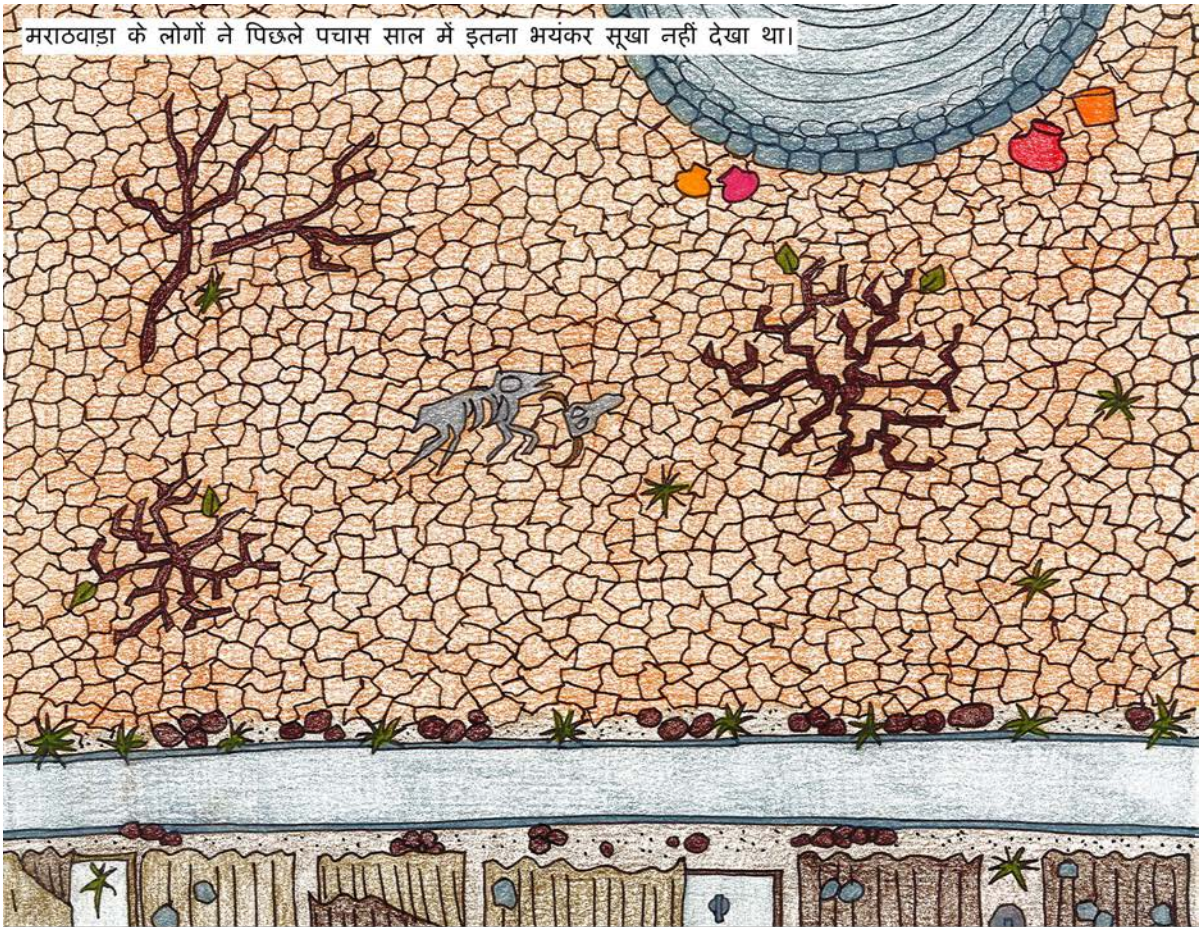
मराठवाड़ा के लोगों ने पिछले पचास साल में इतना भयंकर सूखा नहीं देखा था।

माँ बताती है कि चारा ना होने से बड़ी तादाद में जानवर मर रहे थे।

बहुत से परिवारों को कई-कई दिन तक खाना और पानी नसीब नहीं होता था। औरतें एक-एक बूँद के लिए लड़ती थीं।

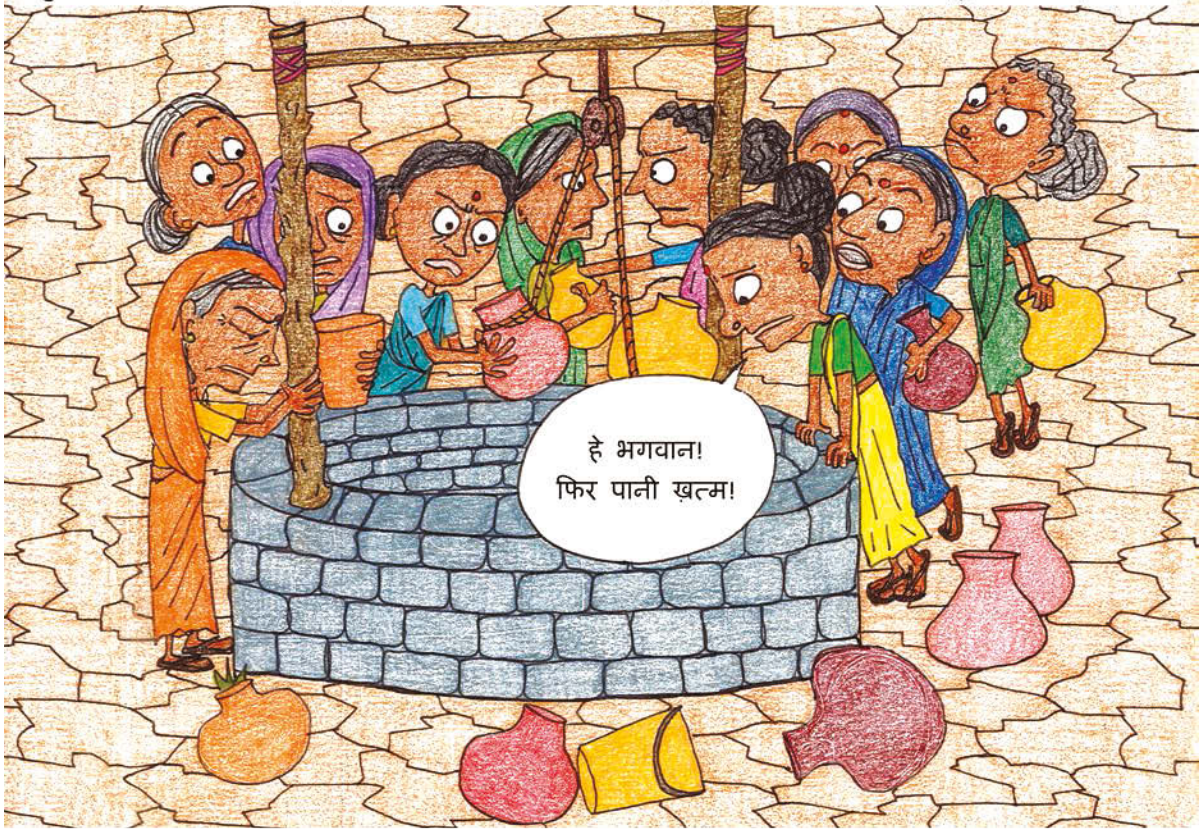

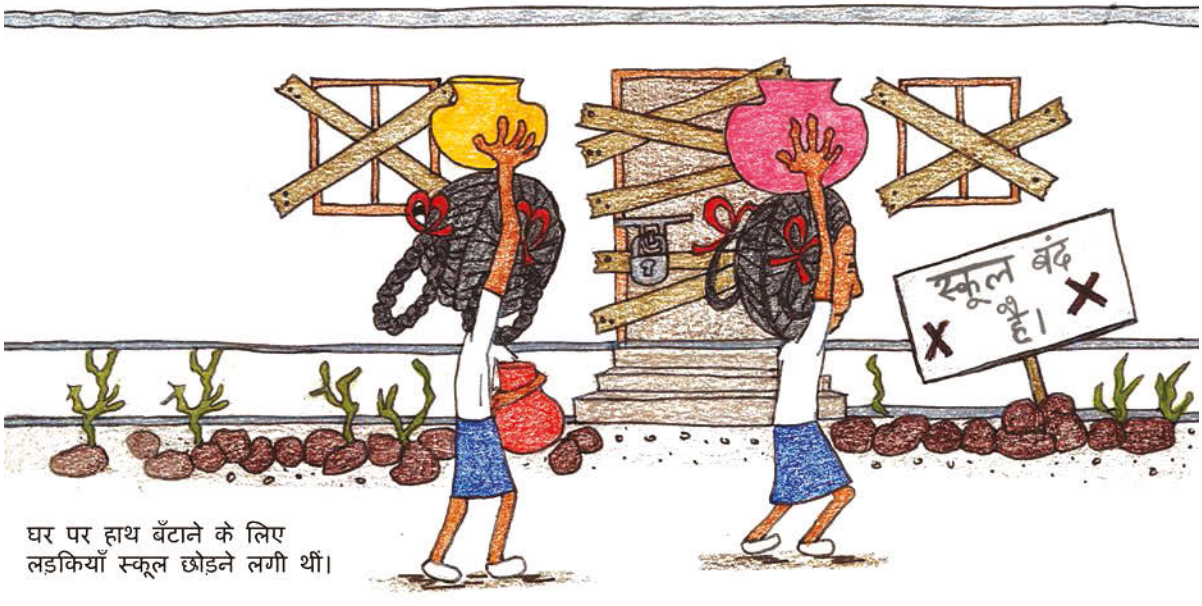

घर पर हाथ बँटाने के लिए
लड़कियाँ स्कूल छोड़ने लगी थीं।

ख़राब होती फ़सल और आमदनी का कोई तरीक़ा ना होने से ज़्यादातर आदमी नौकरी की तलाश में शहर की ओर पलायन कर गए।

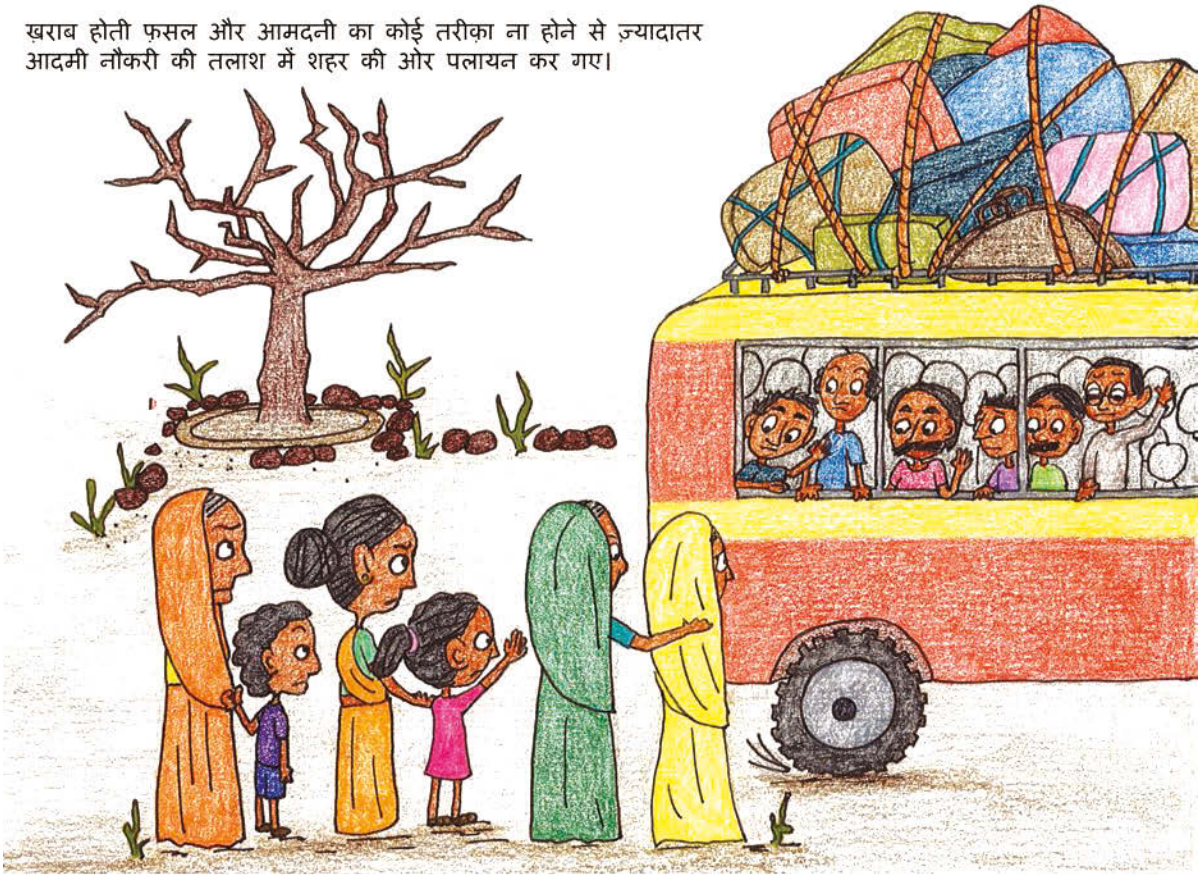

जब मैं पैदा हुई थी, हमारे पास भी अपनी ज़मीन नहीं थी। पर मेरे बाबा गंधोरा में ही रुके रहे और नदी को पुनर्जीवित करने की कोशिश में लगे रहे।

हम इसे गोदावरी बुलाएँगे।

मुझे स्कूल जाना बहुत पसंद था। इतिहास मेरा प्रिय विषय था।

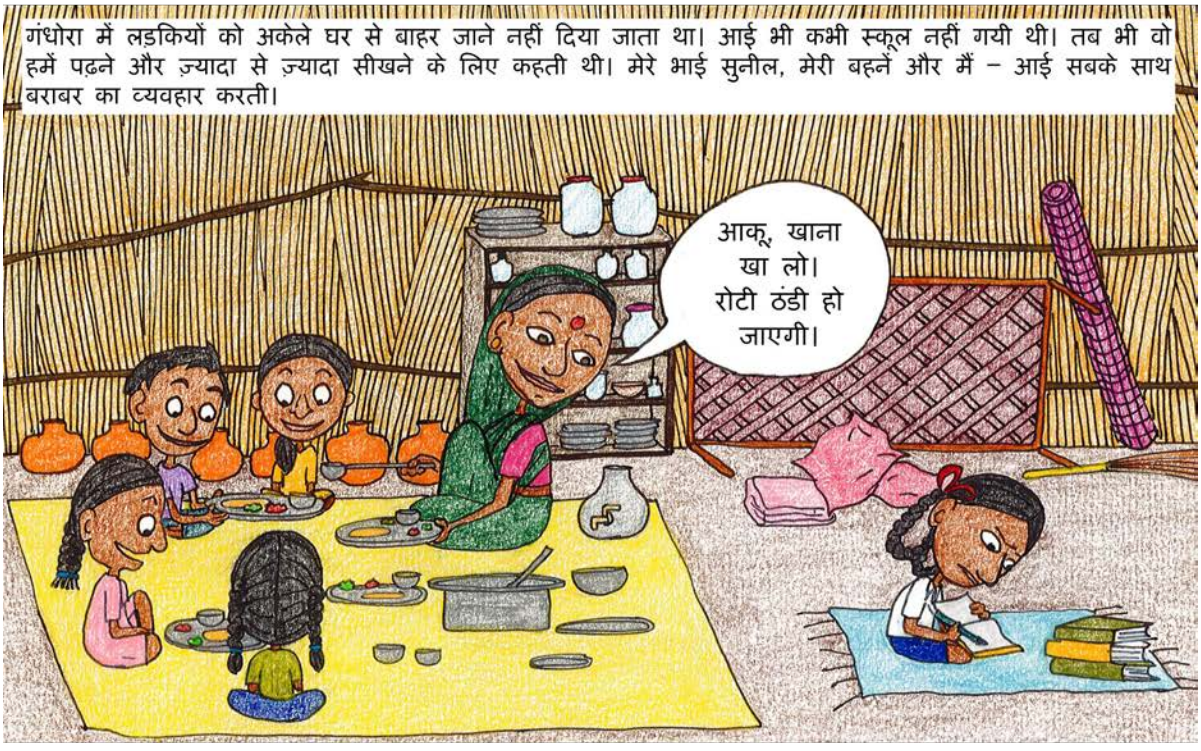
गंधोरा में लड़कियों को अकेले घर से बाहर जाने नहीं दिया जाता था। आई भी कभी स्कूल नहीं गयी थी। तब भी वो हमें पढ़ने और ज़्यादा से ज़्यादा सीखने के लिए कहती थी। मेरे भाई सुनील, मेरी बहनें और मैं – आई सबके साथ बराबर का व्यवहार करती।
आकू, खाना खा लो। रोटी ठंडी हो जाएगी।

स्कूल के बाद, मैं और अर्चना गंधोरा घूमने निकलते। वो मेरी पक्की दोस्त थी।

चल! एकदम ऊपर तक चढ़ते हैं।

कभी-कभी उसे थोड़ा मनाना पड़ता था...

....पर वो जल्दी ही मान भी जाती थी। हमारी जोड़ी बहुत मस्त थी!

बस पहुँच ही गए!

आज वो तुलजापुर की पहली महिला पोस्टमास्टर है।

पेड़ पर बैठकर हम दूर खेतों को निहारते थे।

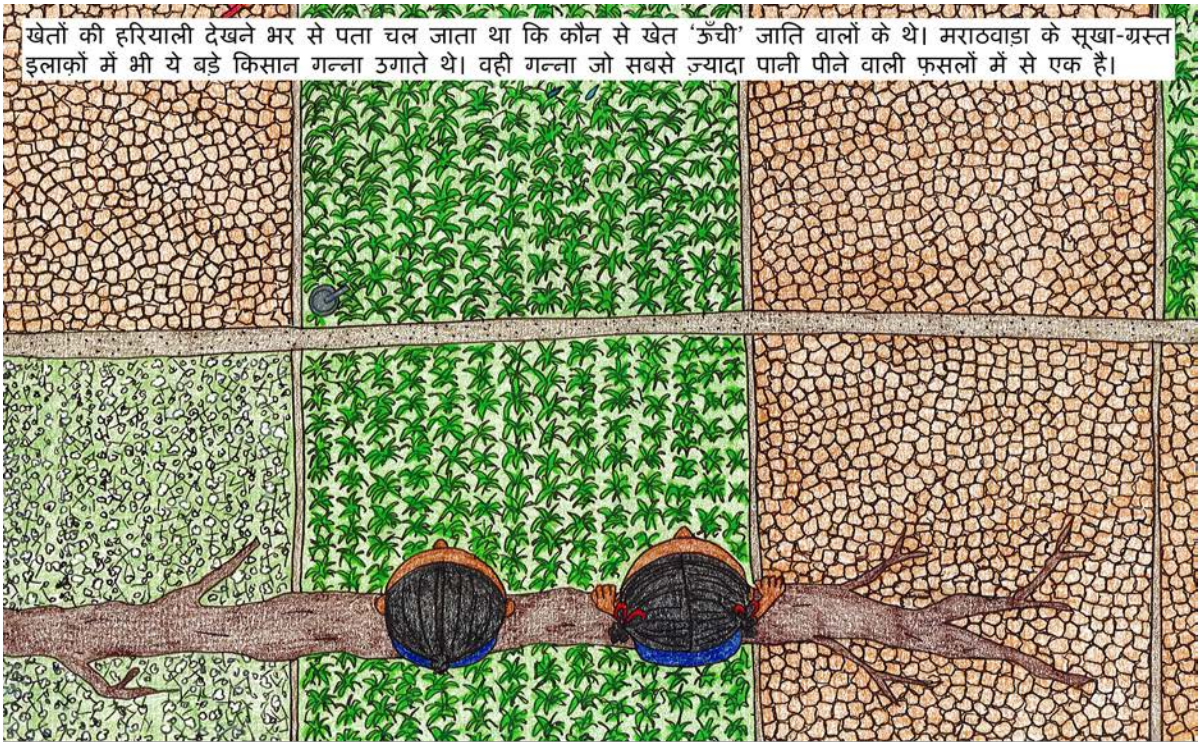

दूसरी तरफ़ 'पिछड़ी' जातियों के छोटे किसान अपनी थोड़ी-बहुत ज़मीन लेकर मानसून की मार, ख़राब फ़सल, क़र्ज़ और हताशा से जूझते रहते थे। उनकी सारी बचत नए कुएँ खोदने में ही ख़र्च हो जाती।

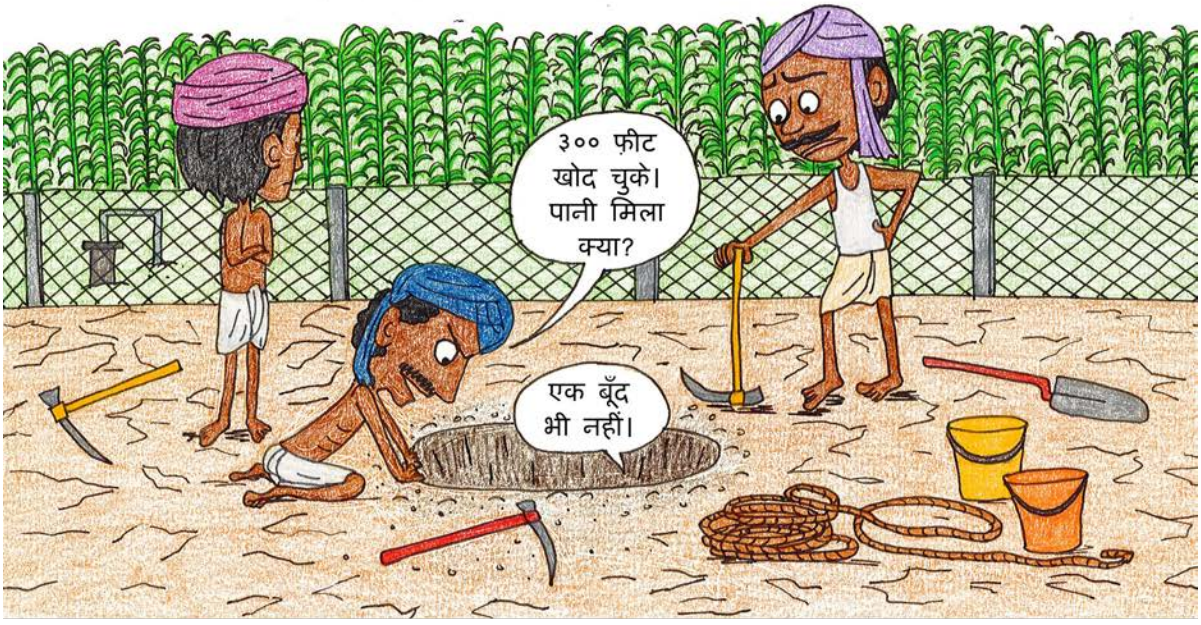

आकू, वहाँ ऊपर क्या कर रही है? नीचे आ और आई की मदद कर!
सुनील हमेशा हमारी मस्ती पर पानी फेर देता था।

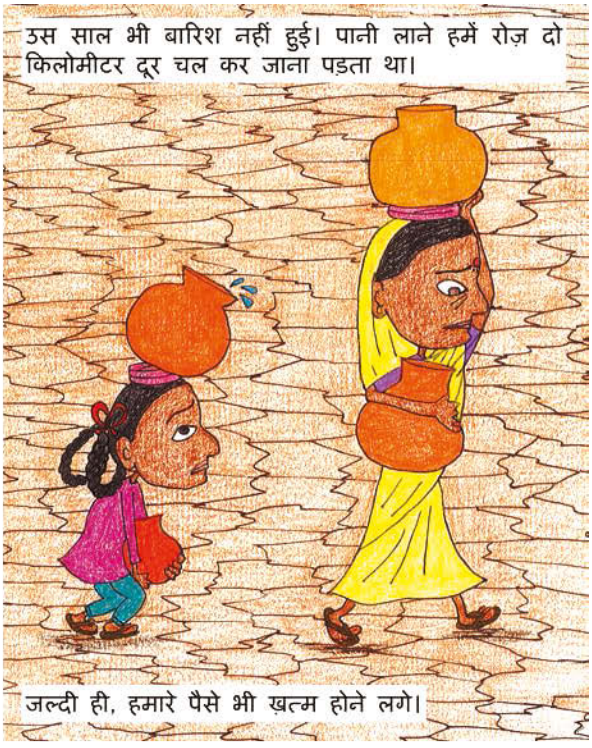
उस साल भी बारिश नहीं हुई। पानी लाने हमें रोज़ दो किलोमीटर दूर चल कर जाना पड़ता था।
जल्दी ही, हमारे पैसे भी ख़त्म होने लगे।

आई, ये तो तुम्हारा पसंदीदा हार है। इसे क्यों बेच रही हो?
वरना खाना कैसे खाएँगे?
मेरी बहन की शादी में दहेज के लिए लिया गया क़र्ज़ भी बढ़ रहा था।

इस सबके ऊपर मेरा दाख़िला बड़ी स्कूल में हो गया जो कि दूसरे गाँव में था। वहाँ तक कोई बस नहीं जाती थी।
अब इसे स्कूल कैसे भेजेंगे?
इसका नाम कटवाना पड़ेगा।

स्कूल के बाहर की ज़िंदगी बहुत अलग थी। रोज़ मैं अपनी बहनों के साथ ऊपर जंगल में गोबर और लकड़ी इकट्ठा करने जाती थी। माँ को भी घर के कामों में मदद चाहिए होती थी।

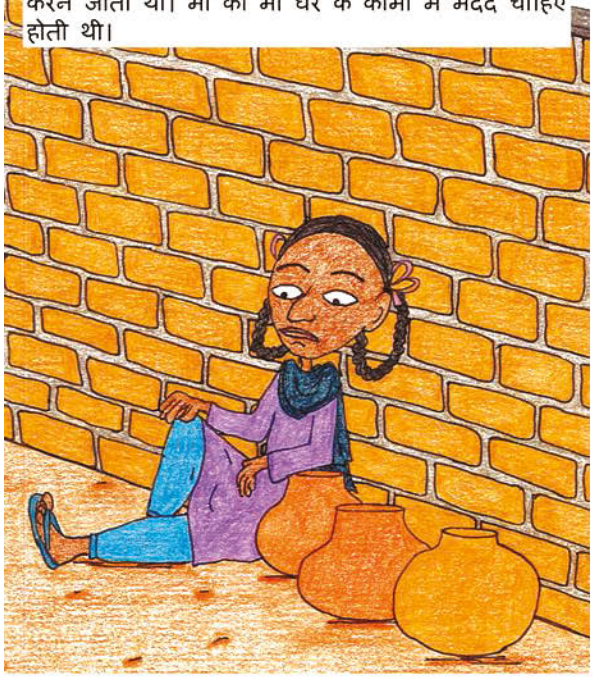

मैं वापस स्कूल जाकर पढ़ना और सीखना चाहती थी, पर काम ख़त्म होते-होते दिन भी ख़त्म हो जाता था।

अनिता कुलकर्णी हमारे पड़ोस में रहती थीं। वो ब्राह्मण थीं। उनकी जाति की औरतों को घर से बाहर काम करने की इजाज़त नहीं थी। पर वो अलग थीं। वो बहुत हिम्मती और आत्मनिर्भर महिला थीं। वो ट्रैक्टर चलातीं, खेत जोततीं और खेत का बाक़ी काम भी करती थीं।

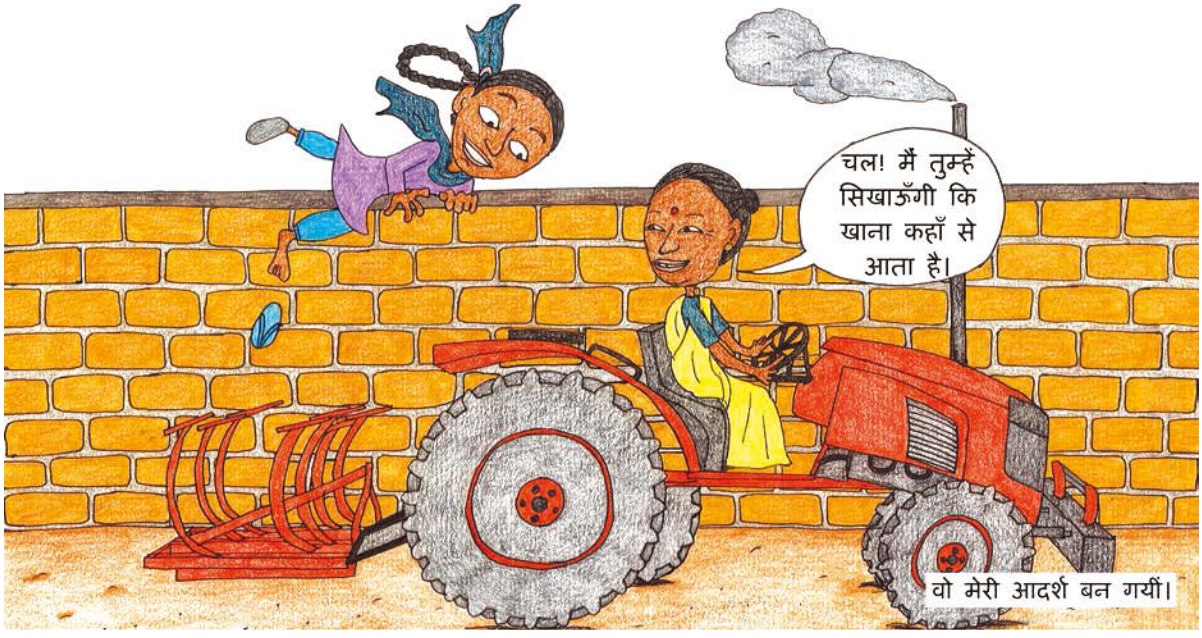

कुलकर्णी ताई जैविक खेती करती थीं। गाँव के बाक़ी बड़े किसान केवल नकदी फसल जैसे गन्ना और सोया लगाते जिसे वो ऊँचे दामों पर बेचते थे। दूसरी तरफ़ ताई ने मुझे दालें, बाजरा और हरी पत्तेदार सब्ज़ियाँ उगाना सिखाया। वो कभी हानिकारक कीटनाशक और रासायनिक खाद इस्तेमाल नहीं करती थीं।

मैं घंटों उनके खेत पर बुवाई, जुताई और कटाई की हर छोटी तकनीक सीखती रहती।

वो मुझे हर दिन के पाँच रुपए देतीं। मैंने खेती से जुड़ी छोटी से छोटी बात सीखी। मुझे बहुत मज़ा आता था।

वैसे ये बहुत मुश्किल काम भी था।
कुलकर्णी ताई और गाँव की बाक़ी
महिलाएँ खेत पर घंटों मेहनत करती थीं।

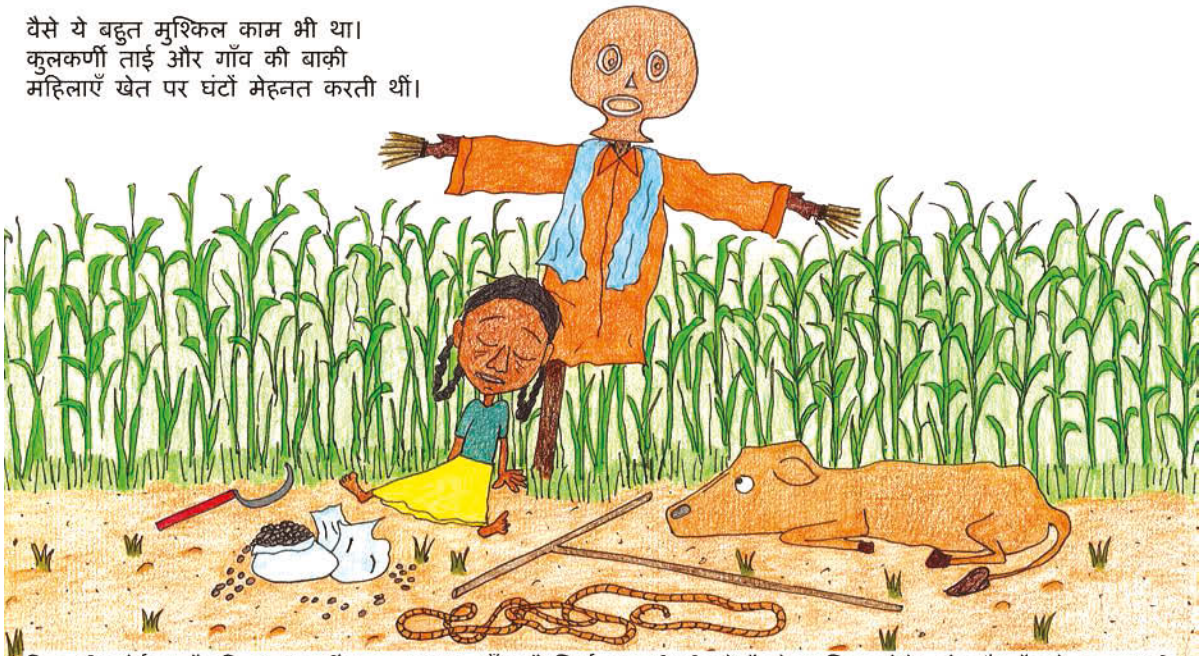

फिर भी कोई उन्हें 'किसान' नहीं मानता था। गाँव में सिर्फ़ आदमी ही खेतों के मालिक होते। वो औरतों को मज़दूर ही समझते थे।

ख़ैर, मुझे तो सबसे ज़्यादा ख़ुशी एक बीज को बड़ा होकर खाने लायक़ बनते देखने में मिलती थी... खेत से हमारी थाली तक। अब हमें बाज़ार से अनाज और सब्ज़ी लाने की ज़रूरत नहीं थी।

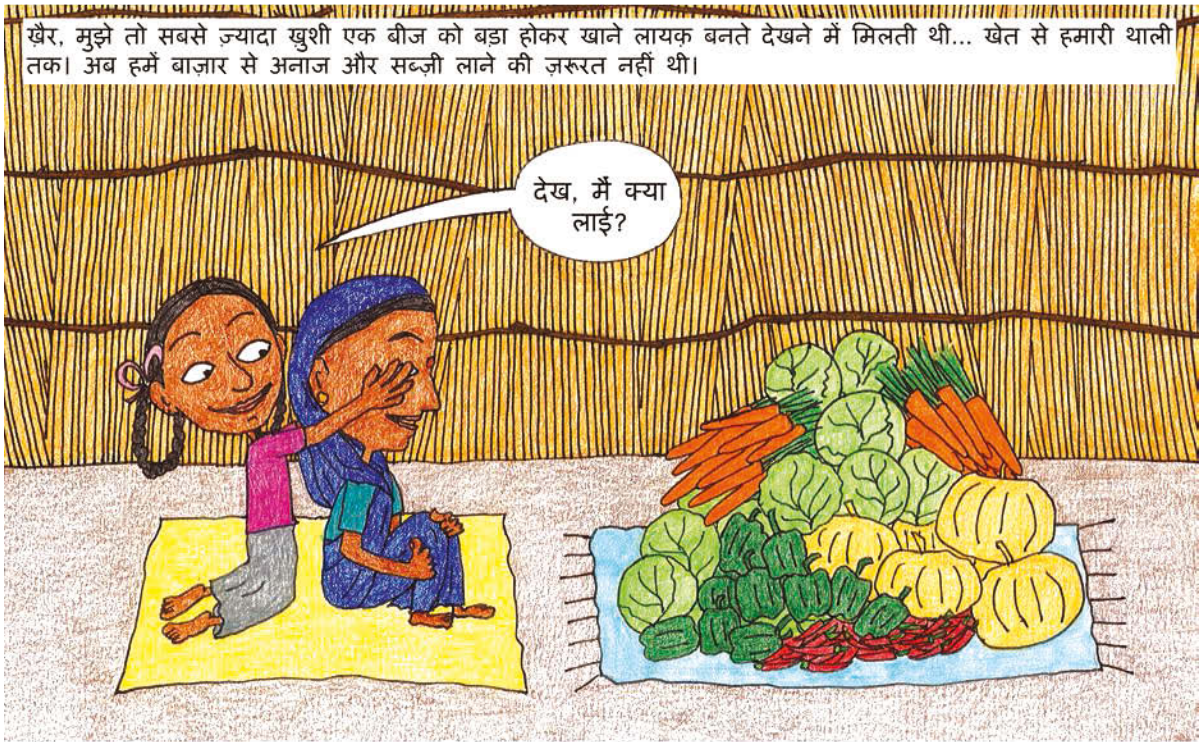

मैंने अगले तीन साल कुलकर्णी ताई के खेत पर काम करते हुए बिताए। एक दिन, १९९४ की बात है, सुनील अचानक मुझे खेत से बुलाने आ गया।

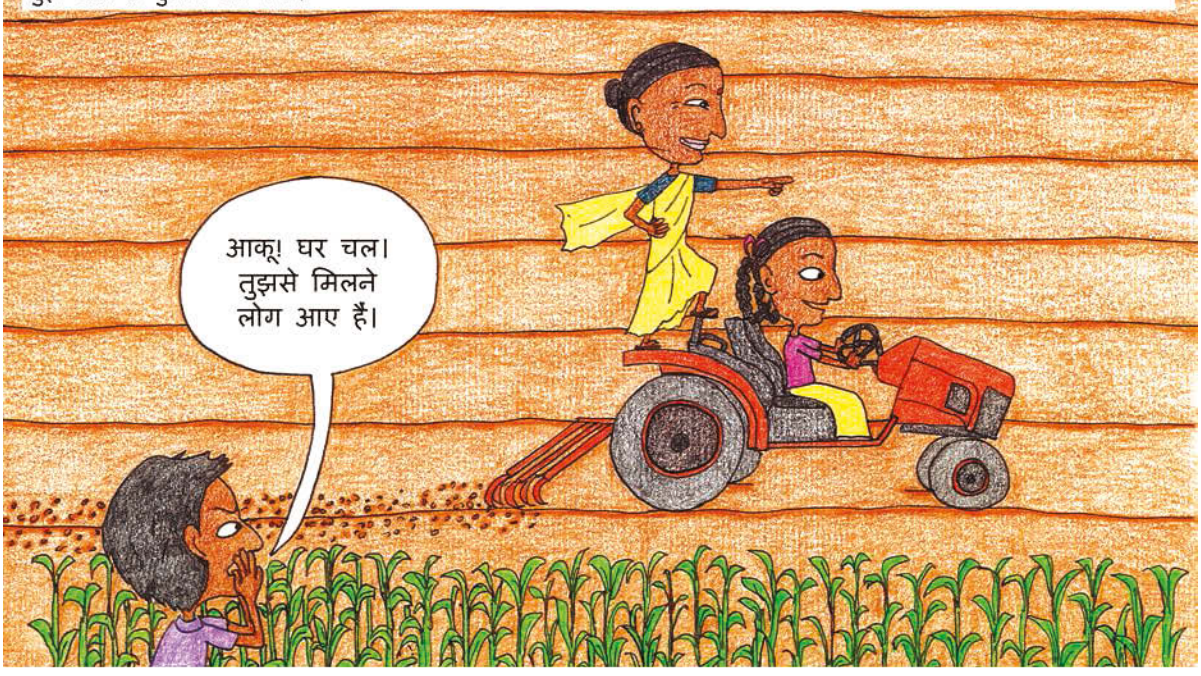

कुछ दिन बाद, २५ नए चेहरे मेरी ज़िंदगी में आ गए। मेरी शादी श्रीधर क्षीरसागर से कर दी गयी थी। वो मुझसे १० साल बड़े थे। मैं सिर्फ़ १६ साल की थी। मुझे कुलकर्णी ताई का खेत और गंधोरा, दोनों छोड़ने पड़े।

मेरे नए घर में जीवन बिल्कुल अलग तरह का था। मेरे पति एक बड़े संयुक्त परिवार में रहते थे। मेरा दिन जल्दी शुरु और देर से ख़त्म होता था। गंधोरा में तो माँ की वजह से हम सब साथ ही खाना खाते थे। पर यहाँ, आदमी और लड़के हमेशा पहले खाना खाते थे।

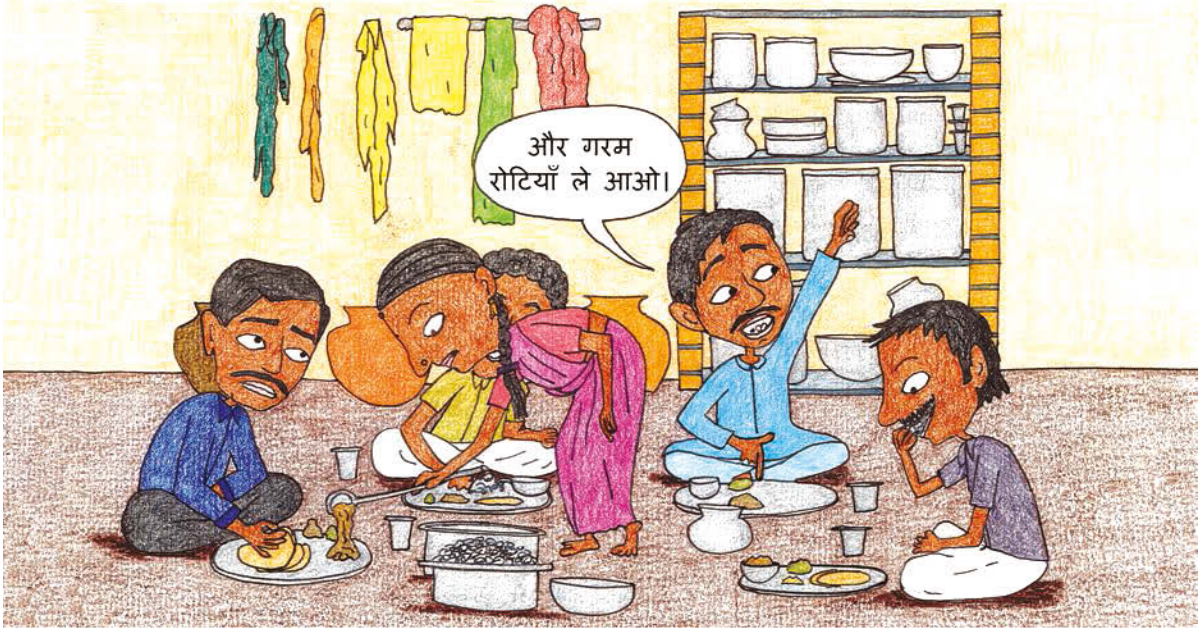

और औरतों को जो भी खाना बच जाता, उसी से काम चलाना पड़ता। अक्सर हमें भूखा ही सोना पड़ता।

पर मेरे पति दयालु थे और मुझे बहुत प्यार करते थे।

हमारे चार साल के साथ में, हमने अपनी एक छोटी सी दुनिया बना ली थी। हमारे दो बेटे हुए – शुभम और सुशांत।

अचानक एक दिन मेरी ज़िंदगी की गाड़ी पटरी से उतर गयी। १९९८ में एक सड़क दुर्घटना में श्रीधर की मृत्यु हो गयी।

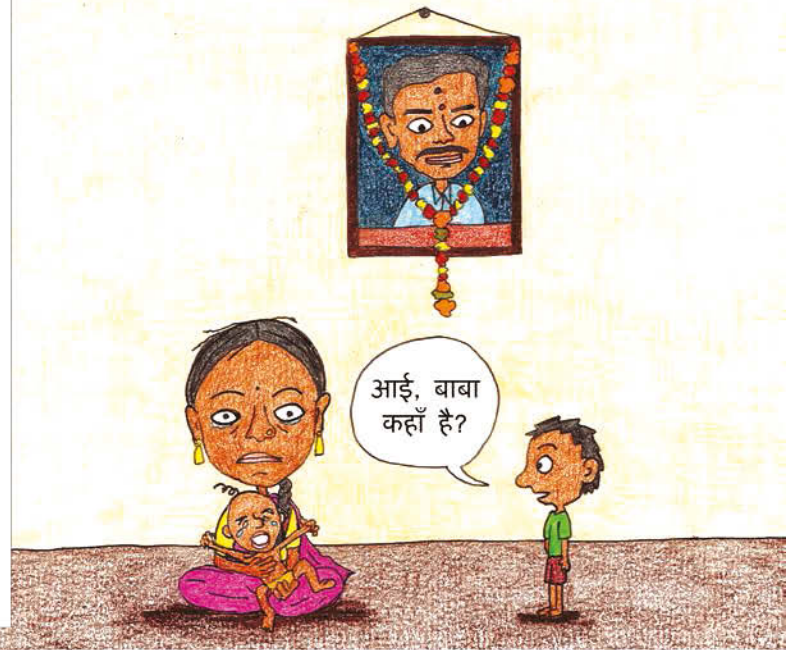

मैं अपनी माँ के पास वापस गंधोरा लौट आयी।

अगला साल तो ना जाने कहाँ बीत गया। मैं केवल २१ साल की थी। मैं एक विधवा भी थी और एक माँ भी।

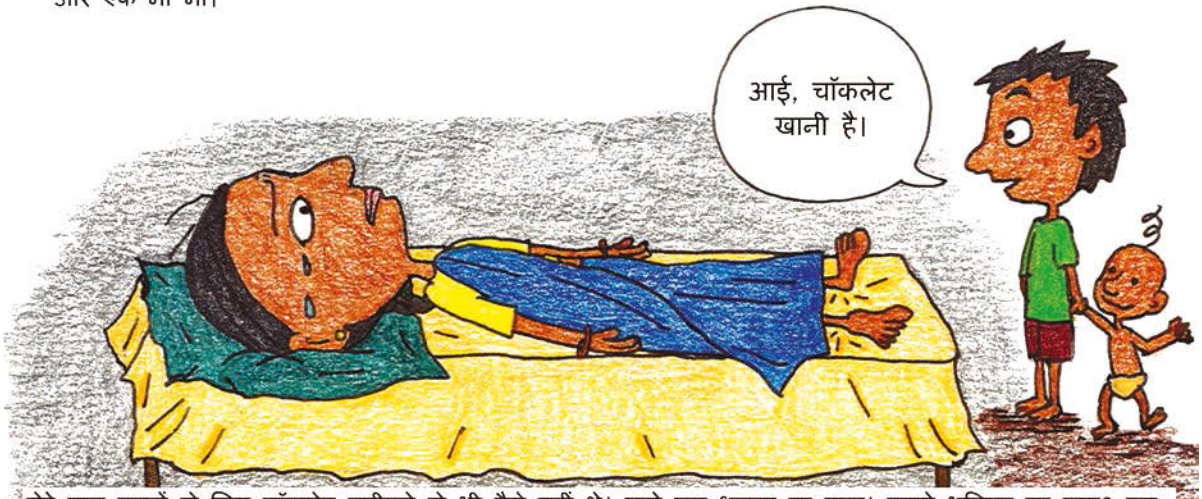

मेरे पास बच्चों के लिए चॉकलेट ख़रीदने के भी पैसे नहीं थे। मुझे एक धक्का सा लगा। इनके भविष्य का क्या? उस क्षण मैंने तय किया कि अपने बच्चों के लिए मुझे फिर से जीना सीखना होगा।

मेरी माँ बचत-घर की सदस्य थी, जो गंधोरा की महिलाओं का छोटा सा बचत समूह था। ये समूह १९९३ के भूकंप के बाद बना था जिसमें मराठवाड़ा के लगभग १०,००० लोग मारे गए थे। इससे कहीं ज़्यादा लोगों के घर और रोज़गार छिन गए थे। सूखे के असर को भी मिला दो तो औरतों पर इसका सबसे ज़्यादा प्रभाव पड़ा। एक दोपहर नसीम ताई हमारे गाँव की महिलाओं के साथ मीटिंग कर रही थी।

जब महिलाओं की बात सुनी तब एक बात तो साफ़ हो गयी: मैं अकेली नहीं थी।

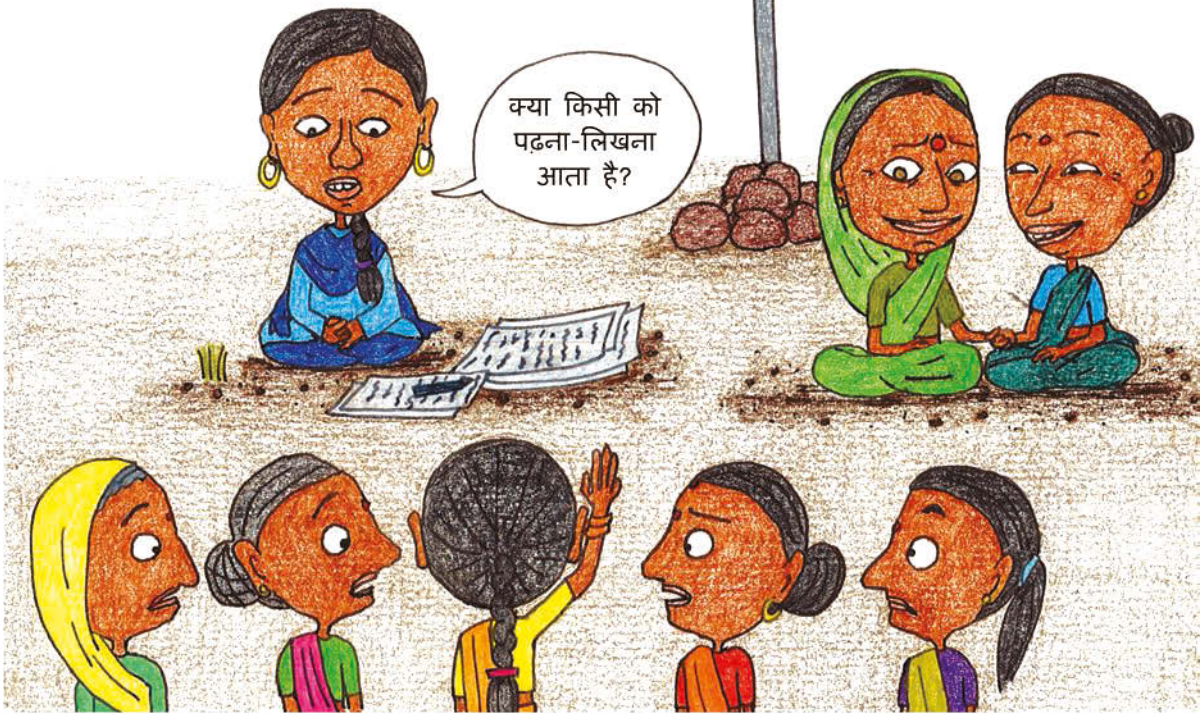

मेरी कुछ सालों की पढ़ाई काम आयी। पर मुझे हिसाब लगाने में समस्या आती थी।

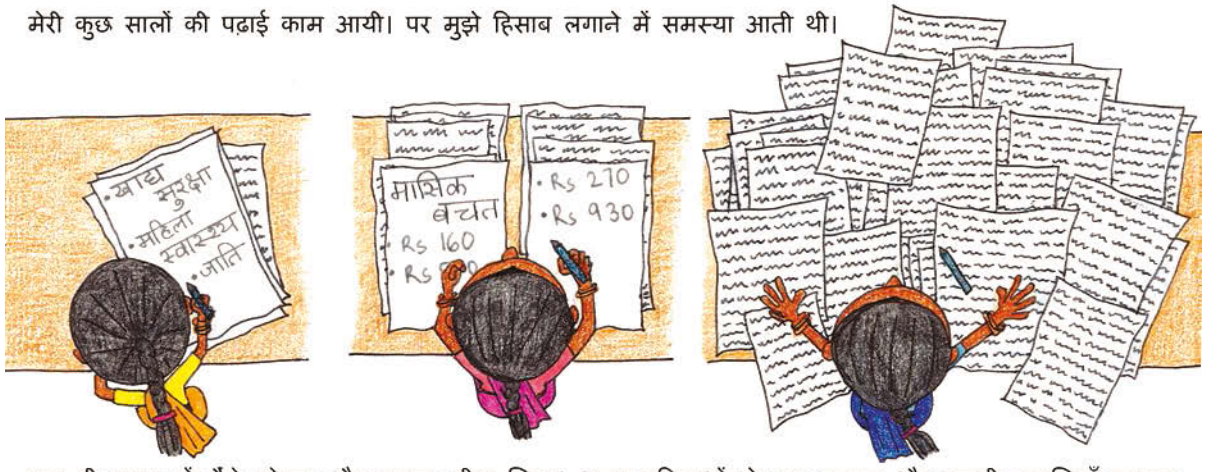

कुछ ही समय में मैंने जोडना और घटाना सीख लिया। अन्य महिलाओं से बात करकर और उनकी कहानियाँ सुनकर मेरी ज़िंदगी फिर अपने पैरों पर खड़ी हो रही थी। मुझे एक नया मक़सद मिल रहा था।

अध्याय ६ : प्रयोगशाला से खेत तक – लैब टू लैंड

२००७ में मराठवाड़ा में फिर सूखा पड़ा। खेती के लिए पानी ना के बराबर था। बड़े किसान अपनी नक़दी फ़सल उगाने के लिए और गहरे बोरवेल खोदने लगे। ग़रीब महिलाओं के लिए अनिश्चितता, नुक़सान और भूख से भरा एक और साल सामने था।

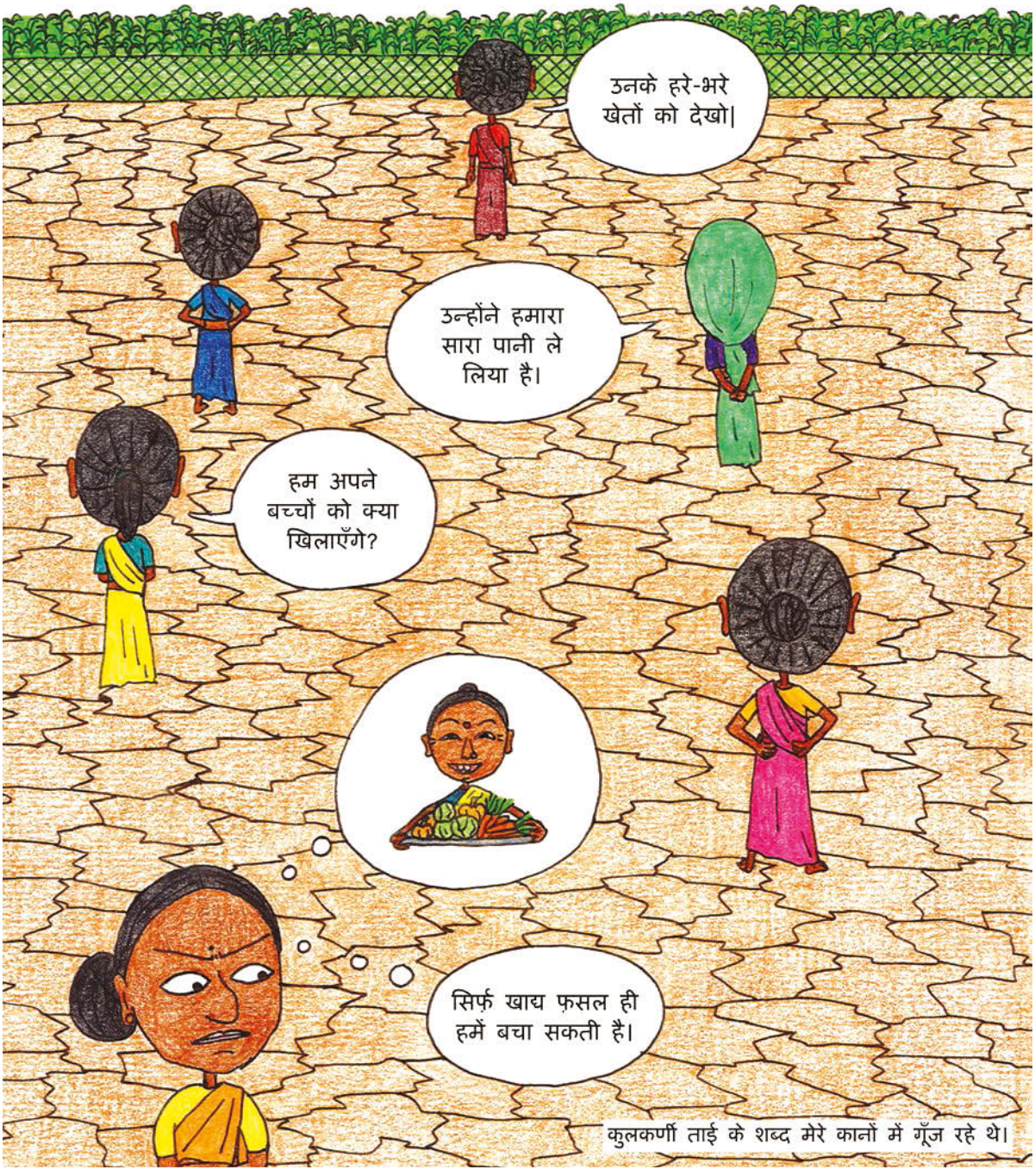

महिलाओं को खाद्य फ़सल लगाने के लिए मनाना मेरे लिए बहुत मुश्किल था। उनके पति इस काम के लिए आधा एकड़ ज़मीन छोड़ने के लिए भी तैयार नहीं थे। मुझे पता था कि सिर्फ़ एक व्यक्ति है जो मुझे कभी मना नहीं करेगी – मेरी सहेली अर्चना।

अर्चना ने दालों, बाजरा और पत्तेदार सब्ज़ियों से शुरुआत की। कम पानी में भी अच्छी फ़सल हुई।

बात फैलने लगी तो आस-पड़ोस के गाँवों और फलों की महिलाएँ भी इससे जुड़ने के लिए आगे आने लगीं।

उस्मानाबाद के कृषि विज्ञान केंद्र से हम समय-समय पर वैज्ञानिकों को बुलाते थे। उन्होंने पानी बचाने और फ़सल की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए हमें नई वैज्ञानिक तकनीकें सिखायी। महिला किसानों ने अपने छोटे-छोटे पट्टों पर हाइड्रोपोनिक, ड्रिप-सिंचाई और स्प्रिंक्लर का इस्तेमाल शुरू कर दिया।

सूखा अब इन महिला-किसानों के लिए एक डरावना सपना नहीं रह गया था। 'लैब टू लैंड' मॉडल का नतीजा हमारी आँखों के सामने था।

सालों के प्रयोग और परीक्षण के बाद आख़िरकार हमने एक ऐसा मॉडल बना लिया जो औरतों के सामाजिक दायित्वों और स्थानीय जलवायु के अनुरूप था। एक एकड़ मॉडल में ३६ तरह की सूखा-रोधी और अल्पकालिक फ़सलें, जैसे हरी सब्ज़ियाँ, अनाज और दालें लगायी जा रही थीं। मौसम के आधार पर, हमने विभिन्न किस्मों के बीजों को चुना। हमारा एक लक्ष्य – सब के लिए भोजन, साल भर भोजन।

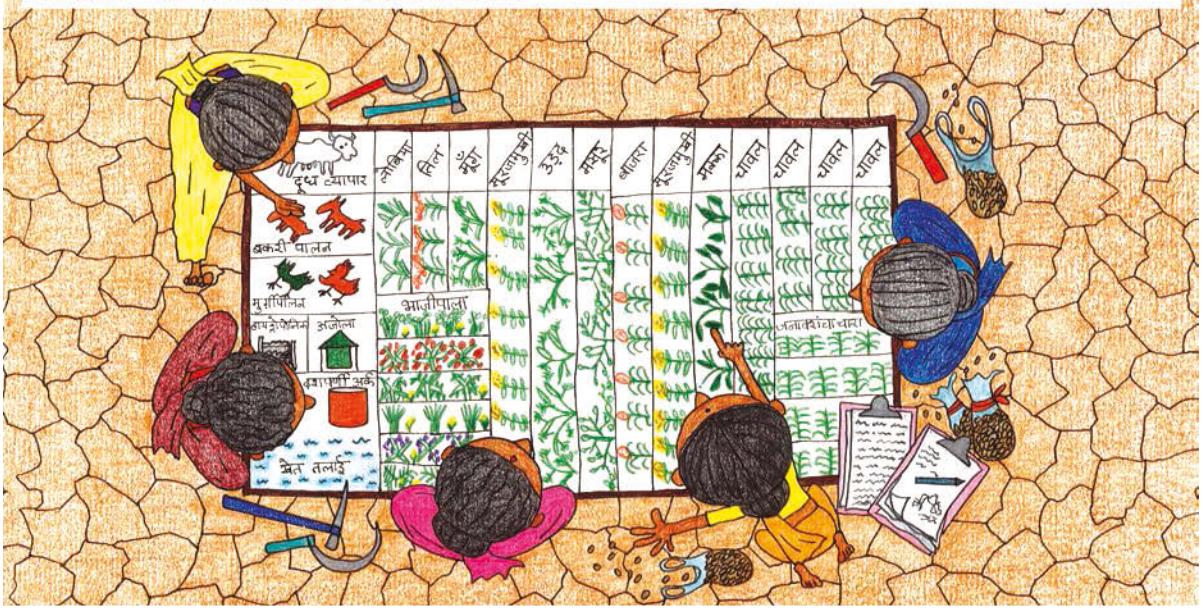

पर ये सभी महिलाओं के लिए आसान नहीं था। बहुतों को अभी भी 'ऊँची' जाति के ग्राम-प्रधान, सरकारी संस्थानों के निराश करने वाले व्यवहार और हिंसक पतियों को सहना पड़ता था।

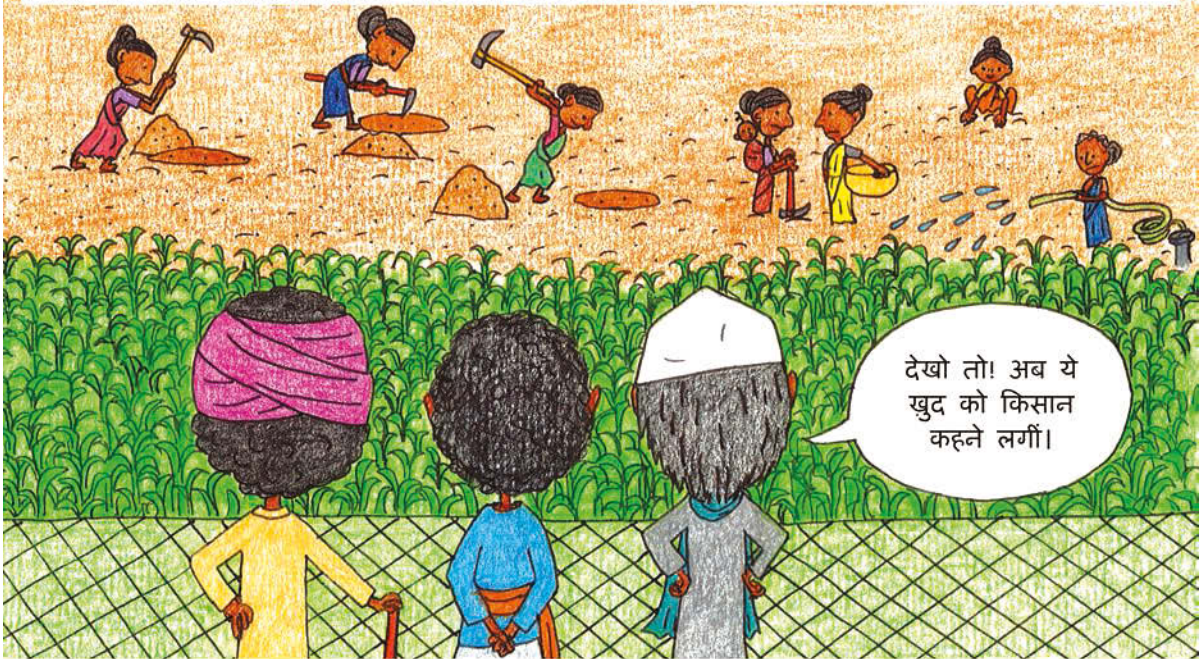

'एक-एकड़ मॉडल' की असली परीक्षा २०१२ में हुई। मराठवाड़ा ने पिछले ४० साल का सबसे भयंकर सूखा देखा। खेती तो छोड़ो, पीने के लिए भी एक बूँद भी पानी नहीं था। हम सरकारी टैंकर और निजी पानी विक्रेताओं के भरोसे थे। हर दिन चुनौती से भरा था।

मुझे बहुत खुशी हुई जब महिला-किसान गाँव की नेता के तौर पर भी उभरने लगीं। उन्होंने बहुत से लोगों को 'एक-एकड़ मॉडल' अपनाने के लिए प्रेरित किया। आदमियों को भी खाद्य-फ़सल का फ़ायदा समझ में आया और वो भी मदद करने लगे। हमने महिलाओं को सरकारी योजनाओं और अनुदान से भी जोड़ा और बाज़ार में व्यापार करना भी सिखाया। इससे उनकी बचत भी होने लगी।

धीरे-धीरे, २००७ में छः किसानों से शुरू हो कर आज ६०,००० से अधिक महिला-किसान इस मॉडल को अपना चुकी हैं।

जैसे-जैसे मॉडल को स्थानीय स्तर पर सफलता मिलनी शुरू हुई, मुझे दुनिया भर के कार्यकर्ताओं और इस क्षेत्र में काम कर रहे संगठनों से अपना अनुभव बाँटने का अवसर मिलने लगा। साथ ही जिस तरह ये लोग पर्यावरण को बचाने की लड़ाई लड़ रहे हैं, उससे मुझे भी बहुत कुछ सीखने को मिला।

पिछले १० सालों में मुझे १७ देशों में जाने का मौक़ा मिला। जब हवाई-जहाज़ ऊपर पहुँचता, मैं नीचे गंधोरा के खेतों को खोजने की कोशिश करती हूँ। वो खेत जो हमारी महिला-किसानों की मेहनत और लड़ाई की बदौलत हरे-भरे हैं।

जब COVID-19 महामारी आयी, राज्यों के बीच की सीमाएँ और बाज़ार बंद हो गए थे। भूख और भय चारों ओर था। बड़े किसानों को बहुत नुक़सान हुआ क्योंकि उनकी कटी हुई नक़द फ़सल ख़रीदने वाला कोई नहीं था।

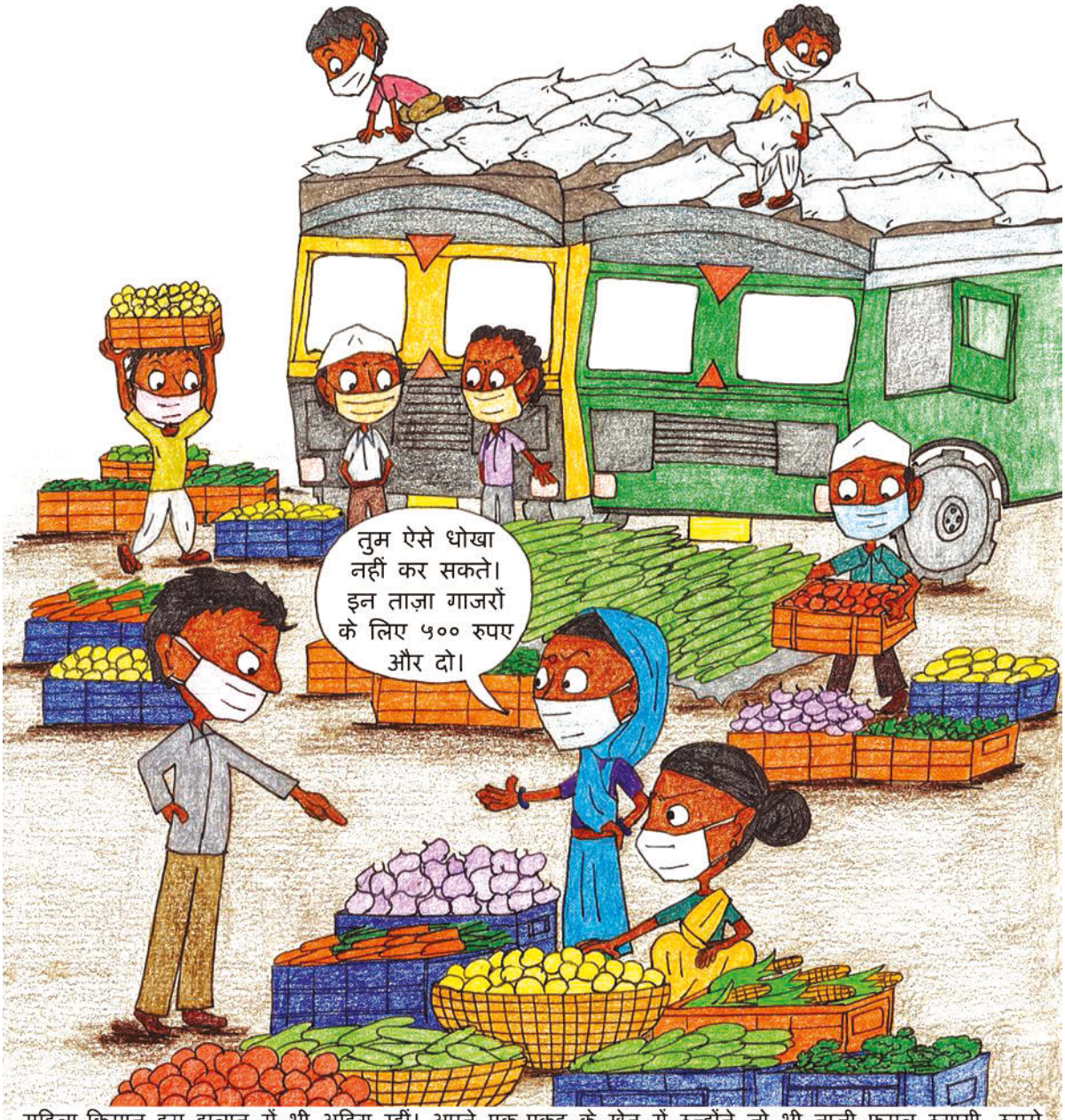

महिला-किसान इस हालात में भी अडिग रहीं। अपने एक-एकड़ के खेत में उन्होंने जो भी ताज़ी फ़सल उगायी, उससे उनके परिवार का पेट भरता रहा। कुछ औरतों ने स्थानीय मंडी में अपनी अधिक हुई पैदावार बेच कर मुनाफ़ा भी कमाया। विजयालक्ष्मी सखी प्रोडुसर कंपनी के शेयरधारक के रूप में, इस पुरुष-प्रधान माहौल में भी उन्होंने अपनी फ़सल का सही मूल्य लगवाया।

हम बहुत आगे तक आ गए हैं पर अभी भी कई लड़ाइयाँ जीतना बाक़ी हैं। 'एक-एकड़ मॉडल' हर महिला तक पहुँचना चाहिए। हर घर से महिला की पहचान उत्पादक और ज़मीन की मालकिन के रूप में होनी चाहिए। ये हर जगह होना चाहिए। एक साथ, कुछ भी असम्भव नहीं।

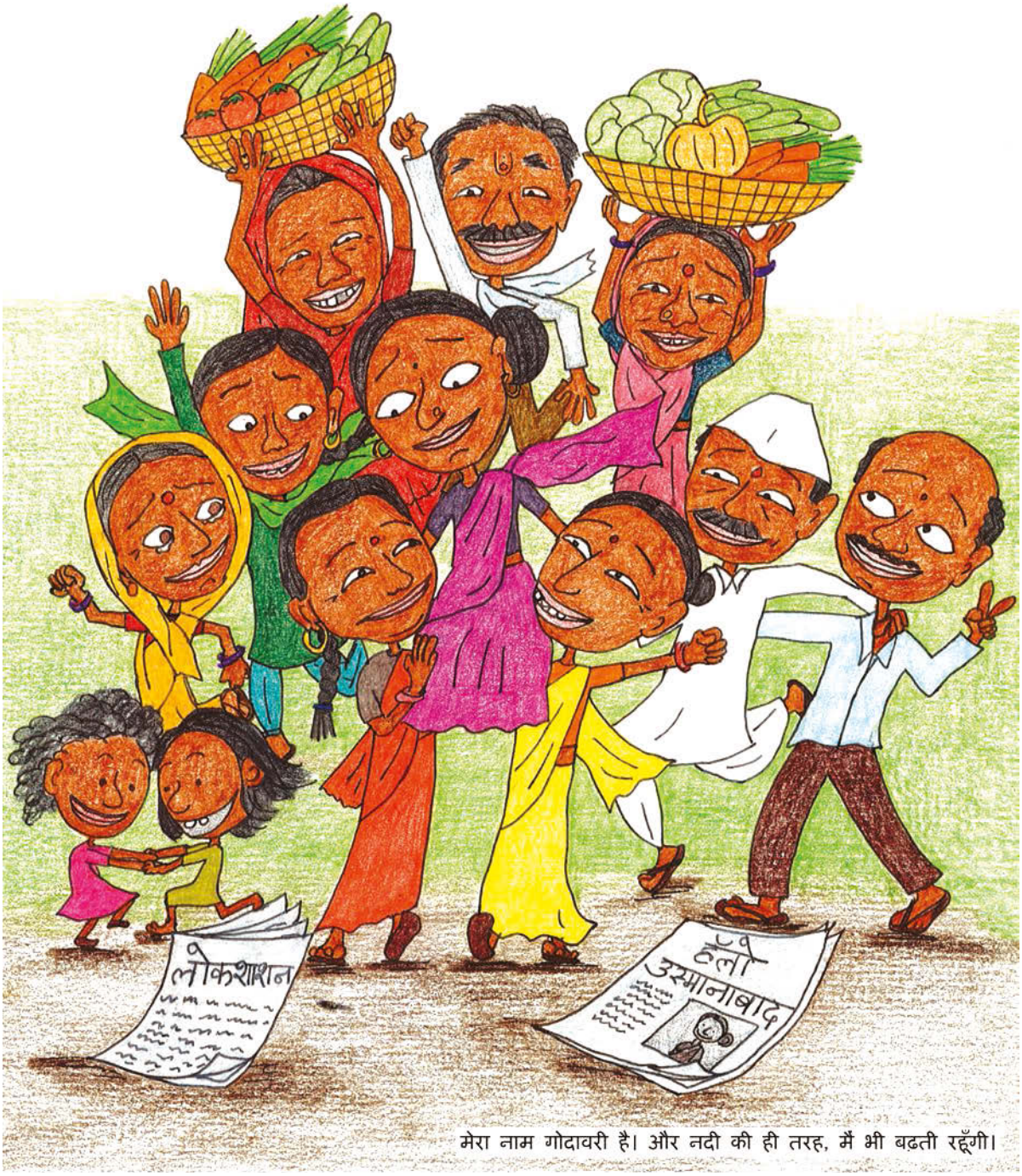

मेरा नाम गोदावरी है। और नदी की ही तरह, मैं भी बढ़ती रहूँगी।

रीतिका रेवती सुब्रमणियन

मुंबई से ताल्लुक़ रखने वाली पत्रकार और शोधकर्ता हैं। वह वर्तमान में यू.के. के केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में 'गेट्स केम्ब्रिज स्कॉलर' के रूप में जेन्डर स्टडीज में पी.एच.डी कर रही हैं। अपने काम के माध्यम से वह भारत में जलवायु परिवर्तन, श्रमिक पलायन और लैंगिक हिंसा के आपसी सम्बन्धों पर शोध करती हैं।

मैत्री डोरे

मुंबई से ताल्लुक़ रखने वाली वास्तुकार और स्वतंत्र चित्रकार हैं। वह अपने चित्रों के माध्यम से लिंग, जाति और धर्म के आइने से भारत में उत्पीड़ित समुदायों के संघर्षों को उजागर करने का प्रयास करती हैं। वर्तमान में स्वीडन के गॉथेनबर्ग यूनिवर्सिटी से सांस्कृतिक विरासत संरक्षण में पी.एच.डी कर रही हैं।